मुक्तिबोध के साहित्य चिन्तन के आयाम

मुकेश कुमार यादव

शोधछात्र, हिंदी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

मुक्तिबोध के साहित्य–चिंतन में इतिहास, समाज, राजनीति, सभ्यता की निरंतर विकासमान गति इन सबसे निर्मित मनुष्य के इन्द्रिय बोध, कल्पना, विचार और भावनाएं प्रमुखता पाती हैं। ज्ञानोदय के तमाम मूल्यों को मुक्तिबोध मानते हैं लेकिन वे उनकी निरंतर परिवर्तनीयता को लेकर अत्यंत सजग हैं। उनके साहित्य का विषय जो मनुष्य है वह जितना बाहर है, उतना ही भीतर है। मुक्तिबोध का साहित्य–चिंतन इस बात का प्रमाण है कि आधुनिक मनुष्य की चेतना की भीतरी तहों को अलग–अलग विशेषताओं एवं अनुशासनों में बांटकर समझा नहीं जा सकता। साहित्य सर्वाधिक इस संश्लिष्ट मनुष्य को अभिव्यक्त और निर्मित करने में सक्षम है।

मनुष्य एकायामी नहीं है। जिस सभ्यता को मानव प्रजाति ने जन्म दिया है, उस सभ्यता की विकासयात्रा के तमाम चिह्न मानव प्रजाति के अलग–अलग व्यक्तियों में जिन भावनात्मक और वैचारिक संकुलों का निर्माण करती है, वे सार्वभौम भी है और विशिष्ट भी। मुक्तिबोध का साहित्य–चिंतन उन तमाम लोगों के लिए उपयोगी है जो ज्ञानात्मक विस्फोट के इस युग में मानव जीवन के अलग–अलग पक्षों के विशेषज्ञ अनुशासनों से बंधे है।

मुक्तिबोध ने अपने साहित्य–चिंतन के माध्यम से इतिहास दृष्टि, ज्ञान मीमांसा और सभ्यता समीक्षा के क्षेत्रों में नवोन्मेष उत्पन्न किया। वे एक चिंतक–कवि थे लिहाजा उनका साहित्य चिंतन महज उनके आलोचकीय लेखों में नहीं, बल्कि उनकी कविताओं और कहानियों में भी पर्याप्त व्यक्त हुआ है। भौतिक विज्ञान के नवीनतम आविष्कारों से लेकर बीसवीं सदी की समस्त महत्वपूर्ण चिंतना धाराओं पर उनकी प्रखर दृष्टि थी। वे इनमें झलकने वाले किंचित भी मानवीय सत्य के प्रति निरपेक्ष नहीं रह सकते थे।

मुक्तिबोध के साहित्य चिंतन में व्यक्त आजादी के बाद के राजनीतिक व सामाजिक परिदृश्य, व्यक्ति के स्वातन्त्र्य प्रतिबद्धता व पक्षधरता, वस्तु व रूप सम्बन्धी विमर्श, जीवन की पुनर्रचना, सभ्यता समीक्षा, रचना प्रक्रिया, कला प्रक्रिया के तीन सोपान, फैंटेसी तत्त्व, ज्ञानात्मक संवेदन व

संवेदनात्मक ज्ञान आदि विषय ऐसे हैं जो उन्हें अपने समकालीन कवि अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, शमशेर बहादुर सिंह आदि से अलग स्थापित करते हैं।

मुक्तिबोध समकालीन कवि अज्ञेय आदि जहाँ आजादी के बाद नेहरू के विकास माडल व समाजवाद का समर्थन करते हैं, वहीं मुक्तिबोध इसे पूंजीपतियों की आजादी मानते हैं, कांग्रेस के घोषणा पत्र को देशी पूंजीपतियों का घोषणा पत्र मानते है और कहते है कि नये शासको द्वारा जनता को भरमाने के लिये समाजवाद को लक्ष्य घोषित किया गया है।

मुक्तिबोध शीतयुद्ध के राजनीतिक व सांस्कृतिक प्रभावों के खिलाफ एक उत्पीड़ित जनता के पक्षधर कवि थे। अज्ञेय के व्यक्ति स्वातंत्र्य का विरोध करते हुए मुक्तिबोध लिखतें है– व्यक्ति स्वतंत्रता का वादी चल नहीं सकता मुक्ति के मन को जन को अगर कहीं मुक्ति है तो सबके साथ है, जबकि मुक्ति के रास्ते अकेले में नहीं मिलते अगर वो है तो सब के साथ।

मुक्तिबोध ने **'कामायनी :एक पुनर्विचार'** लिखा, और कामायनी को **'सभ्यता समीक्षा'** कहा उसी रूप में उसे देख परखा व स्वयं उनकी कविताओं में उनके समय के औपनिवेशिक भारत से लेकर आजादी के संघर्ष और उनके जीवन काल तक की **'सभ्यता समीक्षा'** है।

मुक्तिबोध ''साहित्य जीवन की पुनर्रचना है'' के सवाल पर लिखा है कि– ''साहित्य विवेक मूलतः जीवन विवेक है। जीवन की व्याख्या उन्होंने त्रिकोण के रूपक के सहारे की है और उनके अनुसार उसकी किसी एक भुजा की उपेक्षा करके पूरी नहीं हो सकती।

जीवन के प्रति त्रिकोण रूपक की धारणा मुक्तिबोध के समग्र चिंतन को स्पष्ट कर देती है। प्रथम भुजा जीवन का बाह्य जगत है। यह भुजा वर्गपूर्ण जगत में विविध मानव–मूल्यों से देश की राजनीतिक–सामाजिक स्थितियों तक के क्षेत्र को मिलाती है। दूसरी भुजा के क्षेत्र से नियमित–राजनीतिक जगत अंतरंग जीवन पर प्रभाव डालता है। अंतर और बाह्य इन दोनों के क्रिया–क्षेत्र और इनके पारस्परिक अंतःसंबंधों को मुक्तिबोध ने स्पष्टता से रूपायित किया है। तीसरी भुजा, चेतना पहली दो के बिना वजूद में नहीं आ सकती। जीवन स्वरूपतः त्रिकोणात्मक होने के कारण, उसकी व्याख्या किसी एक भुजा की उपेक्षा करके पूरी नहीं की जा सकती। न केवल वह अधूरी रहेगी वरन् और एकांगी भी।

मुक्तिबोध ''नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र'' में लिखे अपने एक लेख– 'जनता का साहित्य किसे कहते हैं ?' में उन्होंने अपनी इस बात को बल देकर रखा है, इसके लिये तर्क रखे हैं। उन्होंने लिखा है– ''जनता का साहित्य'' का अर्थ जनता को तुरंत ही समझ में आनेवाले साहित्य से हरगिज नहीं। अगर ऐसा होता तो किस्सा, तोता–मैना और नौटंकी ही साहित्य के प्रधान रूप होते। साहित्य के अंदर सांस्कृतिक भाव होते हैं। साहित्य का उद्देश्य सांस्कृतिक परिष्कार है, मानसिक परिष्कार है। किन्तु यह परिष्कार साहित्य के माध्यम द्वारा तभी संभव है जब सुनने वाले या पढ़ने वाले की अवस्था स्वयं शिक्षित हो। 'जनता का साहित्य' का अर्थ 'जनता के लिए साहित्य' से है और वह जनता ऐसी हो जो शिक्षा और संस्कृति द्वारा कुछ स्टैंडर्ड प्राप्त कर चुकी हो।''

मुक्तिबोध ने प्रगतिशील कविता की मुखरता तथा आवाह्न मूलक संवेदना से अलग हटकर नयी कविता ने व्यक्ति व समाज के अन्तर्द्वन्द्व तथा व्यक्ति के आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व को स्थापित किया। मुक्तिबोध ने नयी कविता के युगबोध को भिन्न स्तर पर ग्रहण किया। आजादी के बाद के भारतीय समाज के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक अन्तर्द्वन्द्व को 'सभ्यता समीक्षा' का आधार लेकर प्रस्तुत किया और इस मामले में वे नयी कविता के एक मात्र कवि हैं, अपने युग की रचनात्मक संवेदना के आत्म संघर्ष का बहुत बारीक विश्लेषण किया। अपनी कविताओं को मुक्तिबोध ने फैंटेंसी के शिल्प में प्रस्तुत किया। वहीं अपने साहित्य के चिन्तन में काव्य सिद्धान्तों को आलोचनात्मक तथा सैद्धान्तिक क्रमबद्धता प्रदान की।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में प्रगतिवाद–प्रयोगवाद, आन्दोलनों आदि की पहचान एक प्रवृत्ति के आधार पर होती थी। लेकिन नयी कविता आन्दोलन के लिये सरल मानदण्ड या प्रवृत्ति सुनिश्चित करना कठिन हो गया। नयी कविता आन्दोलन अनेकानेक काव्य प्रवृत्तियों का समुच्चय था, जिसकी कुछ प्रवृत्तियाँ न केवल विषम थी बल्कि कहीं–कहीं विपरीत भी थी। इस दौर की कविताओं की समीक्षा के लिए मानदण्ड स्थापित नहीं हो पाया। मुक्तिबोध ने इस दुरूह कार्य को अपने हाथ में लिया और अपने समय की साहित्यिक प्रवृत्तियों को समझने की एक दृष्टि विकसित की। यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि यह दृष्टि उन्हें मार्क्सवादी दर्शन से मिली थी। मुक्तिबोध का समग्र साहित्य चिन्तन इसी दृष्टि का परिणाम है, जो उन्हें साहित्य के प्रतिमान निर्धारित करने और साहित्य के समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण को विकसित करने में सहायक होता है।

मुक्तिबोध पर लिखते हुए कवि, आलोचक 'अशोक चक्रधर' ने लिखा– 'मुक्तिबोध की कविताओं की रचना प्रक्रिया और अर्थ प्रक्रिया को समझने का महत्वपूर्ण सोपान है, उनकी समीक्षाई

का ज्ञानात्मक आधार। उनका यह ज्ञानात्मक आधार असल में ज्ञान के द्वंद्ववादी सिद्धान्त पर आधारित है। ज्ञान क्रम में पहला कदम बाह्य जगत की वस्तुओं से सम्पर्क है जो संवदेन की मंजिल से संबंधित हैं दूसरा कदम संवेदन–सामाग्री को व्यवस्थित और पुनर्गठित करके उसका समन्वय करना हे। यह धारणा निर्णय और निष्कर्ष की मंजिल से जुड़ी हुई है। जब संवेदना–सामाग्री समृद्ध होती है और सामाजिक सच्चाई के करीब और अनुकूल होती है तभी हम ऐसी सामाग्री के आधार पर उचित धारणाएं बना सकते हैं। मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो निजबद्धता को मानव–समस्या और विश्व दृष्टिकोण में बदल सकते हैं।

बुद्धिसंगत ज्ञान संवेदनात्मक ज्ञान पर निर्भर होता है। यह बात मुक्तिबोध की समीक्षाई का बुनियादी आधार है। वह व्यक्ति प्रत्ययवादी है जो बुद्धिसंगत ज्ञान को संवेदनात्मक ज्ञान से प्राप्त नहीं मानता बुद्धिसंगत ज्ञान संवेदनात्मक ज्ञान में होता हैं नहीं तो वह बिना स्त्रोत के पानी की तरह जड़ बिना पेड़ की तरह मनोगत स्वतः स्फूर्त एंव अविश्वसनीय हो जाएगा। चूंकि सामाजिक व्यवहार ही मानव ज्ञान को जन्म दे सकता है और चारों ओर के वस्तु–यथार्थ से संवेदनात्मक अनुभव की प्राप्ति की ओर मानव को ले जा सकता है, इसीलिए सामाजिक व्यवहार का ज्ञान क्रम में महत्त्व है।

मुक्तिबोध मूलतः एक कवि थे। परम्परागत कविता से अलग रास्ता चुनने के कारण तथा उनकी कविता में फैंटेंसी के कारण बहुत सारे लोग उन्हें अभी भी दुरूह व कठिन कवि के रूप में जानतें हैं। इसीलिए उन्हें अपनी काव्य संवेदना को सम्प्रेषित करने के लिए समीक्षात्मक काव्य चिंतन भी करना पड़ा।

मुक्तिबोध के अनुसार– ''फैंटेंसी एक झीना परदा है जिसमें से जीवन तथ्य झांक–झांक उठते हैं। फैंटेंसी का ताना–बाना कल्पना बिंबों में प्रकट होने वाली विविध क्रिया–प्रतिक्रियाओं ही से बना हुआ होता है। दूसरे शब्दों में, तथ्यों का उद्‌घाटन अत्यंत गौण और विकारपूर्ण होता है, किन्तु उन तथ्यों के प्रति की गई क्रिया–प्रतिक्रियाएं ही प्रधान होती हैं।''

फैंटेंसी के रूप में जो कथा प्रस्तुत होती है और कथा के अंतर्गत जो पात्र, चरित्र और कार्य प्रस्तुत होते हैं, वे सब प्रतीक होते हैं, वास्तविक जीवन–तथ्यों के। यही कारण है कि फैंटेंसी का चित्रण करते हुए लेखक, पात्रों, चरित्रों और उनके कार्यों के बारे में अनेकानेक ऐसी बातें कह जाता

है कि जो बातें पात्र–चरित्र और पात्र–कार्य के भीतर से उद्‌गत नहीं होती– नहीं हो सकतीं, क्योंकि वस्तुतः वे उन चरित्रों और कार्यों की अंगभूत नहीं हैं।

''एक साहित्यिक की डायरी'' मुक्तिबोध के रचना कर्म का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है जिसमें 1950 से लेकर 1963–64 तक की प्रवृष्टियां मिलती हैं। 'एक साहित्यिक की डायरी' मुख्यतः साहित्य चिन्तन और रचना प्रक्रिया पर केन्द्रित है जिसमें मुक्तिबोध ने प्रायः वाद–विवाद संवाद की शैली में अपने ज्ञान सिद्धान्त, रचना प्रक्रिया कला के मानदण्ड, आलोचना की कसौटी तथा युगीन साहित्यिक परिस्थिति और उससे सम्बन्धित विमर्शों पर विचार किया है।

डायरी को पढ़ते हुए हम मुक्तिबोध की अनेक कविताओं, कहानियों व आलोचनात्मक लेखों के अन्तः सूत्र प्राप्त कर सकते हैं। मुक्तिबोध ने जिन बातों को दूसरी विधाओं में उनकी प्रकृति के अनुरूप लिखा है, उन्हें ही अनौपचारिक शैली में प्रायः किसी घटनाक्रम किसी परिस्थिति या व्यक्ति के सहारे इस डायरी में कहा गया है।

मुक्तिबोध ने बार–बार साहित्यिक कर्म करने वालों के लिए भी सिद्धान्त व व्यवहार की एकता को जरूरी माना है। यदि ऐसा नहीं है तो साहित्य बड़ा नहीं है तो साहित्य बड़ा नही हो सकता है। किन्तु साहित्य में अभिव्यकत भावनाओं का जीवन के साथ साम◈जस्य व संगति महज यांत्रिक नहीं हो सकती। भावनुभूति की वस्तुनिष्ठता और सही विश्वदृष्टि ही एक बेहतर विकल्प पैदा कर सकती है।

मुक्तिबोध ने साहित्यिक की डायरी में ''तीसरा क्षण'' तथा ''कला का तीसरा क्षण'' शीर्षक से लम्बी टिप्पणियाँ लिखी हैं, जो उनके द्वारा प्रतिपादित प्रस्तावित रचना प्रक्रिया को सामने रखती है। उनके अनुसार ''कला का पहला क्षण है– जीवन का उत्कृष्ट तीव्र अनुभव क्षण। दूसरा क्षण है उस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुये मूल्यों तक से पृथक हो जाना और एक फैंटैंसी का रूप धारण कर लेना, मानों वह फैंटैंसी अपनी ऑखों के सामने खड़ी है। तीसरा क्षण व अन्तिम क्षण है, इस फैंटैंसी के शब्दबद्ध होने का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता है।

मुक्ति बोध ने बहुधा नयी कविता के बारे में तैयारी किये गये मानदण्डों के साथ अपनी कविता में बहस की है, वे बार–बार कलाकार के व्यक्तिक वैशिष्ठय व्यक्तिगत ईमानदारी, अद्वितीयता आदि के विषय में गम्भीर विमर्श करते हुये नयी कविता के आत्मसंघर्ष का एक पक्ष बन जाते हैं। वे मानतें हैं कि–''एक वर्ग विभाजित समाज में व्यक्तियों का एक दूसर से अवगाव व

अकेलापन एक तथ्य है दूसरी ओर कलाकार का जीवन मनामय होने के चलते उसे ऐसे एकान्त की जरूरत भी होती है। जो सोचने, विचारने, मनोमंथन की आवश्यता होती है।'' किन्तु नयी कविता में जिस वैयक्तिकता विशिष्ठता व अद्वितीयता पर जोर दिया गया, उसे उन्होंने भद्र रूप द्वारा खुद को आम जनता से अलग व ऊपर समझने का प्रतिबद्ध न रहकर तटस्थ रहने को एक अभिजात विचार करार दिया। वे कहतें हैं कि–''नयी कविता ऐसे लोगों की कविता है जो मिसफिर है जो न आत्मसामंजस्य लेकिन यह सिर्फ स्थिति नहीं बल्कि कई बार एक सैद्धान्तिक रूप ग्रहण करके अद्वितीयता व विशिष्ठता अर्न्तुखता व संघर्षहीनता का कवच बन जाती है।'' नयी कविता के भीतरी संघर्ष को प्रस्तुत करते हुए मुक्तिबोध लगातार कवि और आलोचक दोनों से यह अपेक्षा रखते हैं कि वे अपने व दूसरों के लिए गलतियों का एक मार्जिन छोड़ दें, ताकि आत्म संघर्ष के उपरान्त सही परिणति तक पहुँचने की गुंजाइश बनी रहे।

मुक्तिबोध विचारधारा विहीन साहित्य को स्वीकार नहीं करते। वे साहित्य के पीछे छिपी हुई राजनीति पर हमेशा नजर रखते हैं। इसीलिए मुक्तिबोध का यह प्रश्न बेहद चर्चित है– ''पाटर्नर तुम्हारी पालिटिक्स क्या है?'' वर्तमान समय में उत्तर आधुनिक विमर्शों की ओर से विचार धारा के अन्त की घोषणा की जा चुकी है। आज यह माना जा रहा है कि विचारधारा से युक्त साहित्य दरअसल सत्य को सीमित करता है और वह खांचाबद्ध होता है, भूमंडलीकरण व उदारीकरण की आर्थिक नीतियों के दौर में प्रतिबद्धता, सामाजिक सरोकार जैसे मूल्यों को व्यर्थ घोषित करार दिया गया है। आज एक बार फिर साहित्य के कलावादी मानदण्डों का आग्रह बढ़ गया है लेकिन इस बार यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता के कलावादी मानदण्डों का आग्रह बढ़ गया है लेकिन इस बार यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता व लोकतंत्र के नाम पर आया है। ऐसे समय में मुक्तिबोध के साहित्य चिन्तन का महत्व व प्रासंगिकता कहीं ज्यादा बढ़ गयी। इस सन्दर्भ में ''चंचल चौहान'' लिखते हैं–''आज मुक्तिबोध एक बार फिर प्रासंगिक होने जा रहे हैं विचारधारा का अन्त घोषित करने वाले विश्वचिंतकों के पैरों तले की जमीन फिर खिसकने वाली है। विश्वपूंजीवाद का लकड़ी का रावण फिर डगमगाने की अवस्था में पहुँच रहा है हालांकि तकनीकी प्रगति से वह अपने उबरने के रास्ते खोज रहा है लेकिन शोषण पाप का परम्पराक्रम चलने वाला नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में मुक्तिबोध की इलहामी घोषणाएं फिर सही साबित होंगी क्योंकि वे वैज्ञानिक विश्वदर्शन के प्रकाश में की गय घोषणाएं हैं। मनुष्य एक बेहतर समाज की कल्पना बार–बार करता रहेगा, अपने उतार चढ़ाव, अपनी भूलगलती, अपनी अकर्मता और सतर्कता के बीच से गुजरते हुए विश्व शोषित मानव एक

नया रास्ता समाज बनायेगा जरूर। यह आस्था ही मुक्तिबोध कविताओं का आधार थी, यह आस्था ही हमारी आज की आलोचना की अन्तः सलिला हो सकती है।''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1– मुक्तिबोध के प्रतीक और बिम्ब, चंचल चौहान, संस्करण 2009, वाणी प्रकाशन दिल्ली।

2– मुक्तिबोध रचनावली खंड–5,6 सं0 नंमिचन्द्र जैन, संस्करण 1998, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

3– मुक्तिबोध की समीक्षाई, अशोक चक्रधर संस्करण 2006, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली।

4– मुक्तिबोध की कविताई, अशोक चक्रधर संस्करण 2003 राधा–कृष्ण प्रकाशन दिल्ली।

पत्रिकायें:–

1– नया ज्ञानोदय, सितम्बर 2014

2– आलोचना सहस्त्राब्दी अंक– 55